EDUZONE: International Peer Reviewed/Refereed Multidisciplinary Journal (EIPRMJ), ISSN: 2319-5045
Volume 8, Issue 1, January-June, 2019, Impact Factor: 5.679, Available online at: www.eduzonejournal.com

उपनिषद एवं स्मृति ग्रंथों में सृष्टि परक सिद्धांतः–

Joginder Singh

Assistant Professor-Sanskrit, Govt College Hansi

शोध सारः–

आगम शास्त्र भारतीय धर्म एवं दर्शन के प्राण हैं। जिन प्राचीन भारतीय मनीषियों ने असाधारण ऋषि–चेतना प्राप्त करके अतीन्द्रिय और अतिमानस ज्ञान के द्वारा समग्र जीव–जगत के पारमार्थिक स्वरूप को प्रत्यक्ष देखा था, जिनकी सम्यक् – सम्बुद्ध चेतना के समक्ष परमसत्य ने अनावृत एवं अविक्षिप्त रूप से अपने स्वरूप को प्रकट कर दिया था, उनकी समाधिजन्य दिव्यानुभूत्तियाँ ही मानव–समाज में आगम निगम रूप से प्रचारित हुई हैं। आगम शास्त्रों का तत्त्व–ज्ञान के पिपासु–साधक–सम्प्रदाय में प्रचार एवं प्रसार होता आया है।

मूल शब्दः–ईश्वर की अवधारणा, उपनिषद, ईशावास्योपनिषद, मुण्डकोपनिषद।

प्रतिपादित विषयों के आधार पर आगम (वेद) के दो भाग हैं कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड। संहिता, ब्राहमण तथा आरण्यकों में मुख्य रूप से कर्म की विवेचना होने के कारण इनका कर्मकाण्डपरक होना सिद्ध होता है। परन्तु उपनिषदों में विशुद्धरूपेण ज्ञान का प्रतिपादन किया गया है, अतः वे ज्ञानकाण्ड कहलाते हैं।

उपनिषदों में अध्यात्म विषयक महत्वपूर्ण समस्याओं का विस्तृत एवं विद्वतापूर्ण विवेचन किया गया है। उपनिषद का ही नामान्तर "वेदान्त" है। इस नामकरण के दो कारण हैं पहला कारण यह है कि इनका स्थान वेद के अन्त में आता है, अतः वेदों के अन्तिम भाग होने के कारण ये वेदान्त कहलाते हैं। दूसरा कारण यह है कि इनमें वेदों के निश्चित प्रतिपाद्य सिद्धान्त विवेचित हैं।

'उपनिषद' शब्द की 'निष्पत्ति उप' तथा 'नि' उपसर्गपूर्वक 'सद्' धातृ से क्विप् प्रत्यय जोड़ने पर होती है। सद् धातु के तीन अर्थ होते हैं दृ विशरण नाश होना, गति प्राप्ति होना, अवसादन शिथिल = करना। इन तीनों अर्थों की एक साथ संगति करने परउपनिषद् शब्द का यह अर्थ निष्पन्न होता है–

प्रत्यक्–चैतन्याभिन्न परब्रहम को प्राप्त अथवा व्यक्त कराने वाली, निःसन्धिबन्धनात्मिका चिजहैड्ग्रन्थिस्वरूपा अविद्या को शिथिल करने वाली अविचारितरमणीय नामरूप कियात्मक मायामय विश्व प्रपंच को समूलोन्मूलन करके जीव की ब्रह्मात्मकता को बोधित करने वाली ब्रह्मविद्या ही उपनिषद है।

उपनिषद के उक्त लक्षण से स्पष्ट होता है कि उप 'निषद' का मुख्य अर्थ है ब्रह्मविद्या तथा गौण अर्थ है– ब्रह्मविद्याप्रतिपादक ग्रन्थ विशेष। ब्रहम के यथार्थ स्वरूप, जीव तथा जगत के साथ उसका वास्तविक सम्बन्ध एवं ब्रह्म की उपलब्धि के उपाय आदि आध्यात्मिक गूढ़ विषयों की विस्तृत एवं विशद विवेचना इन ग्रन्थों में की गई है। अतः इनकी उपनिषद संज्ञा सर्वथा समीचीन है। भिन्न भिन्न उपनिषदों में सृष्टि का कारण, प्रयोजन और क्रम भिन्न भिन्न रूप से उपलब्ध होता है किन्तु गहन अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि बाह्य भिन्नता के पीछे एक अभिन्नता छुपी हुई है। जगत्कारणरूप में एक ही अनिर्वचनीय शक्ति के भिन्न–भिन्न नाम उपलब्ध होते हैं किन्तु उन नामों में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है। कहीं उसे आत्मा कहा गया है तो कहीं ब्रह्म, कहीं उसे "सद की संज्ञा दी गई है तो कहीं हिरण्यगर्भ या प्रजापति और कहीं प्राण या रयि। किन्तु इन सबका स्वरूप एक जैसा ही उपलब्ध होता है क्योंकि एक वस्तु का अनेक रूप में व्याख्यान करना विद्वानों की, विशेषता है– "एकं सदविप्रा बहुधा वदन्ति। इस बहुधा विवेचन का ही यह परिणाम है कि औपनिषद ज्ञान से

अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों ने जन्म लिया और अपने–अपने मतानुसार उपनिषदों का प्रतिपाद्य प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया।इस प्रकार उपनिषदों में ईश्वर आदि सभी तत्वों का विशद विवेचन प्राप्त होता है।

ईश्वर की अवधारणाः–

चारों वेदों एवं समस्त उपनिषदों में ईश्वर के स्वरूप, गुण–धर्म एवं उसके क्रिया कलाप के विषय में सैकड़ों मंत्र, कारिकायें आदि विद्यमान हैं। ईश्वर का अस्तित्व है या नहीं, ईश्वर नित्य है या अनित्य, ईश्वर जन्म लेता है या नहीं, ईश्वर साकार या निराकार हैईश्वर का क्या स्वरूप है, उसकी मूर्ति होती है या नहीं, उसकी क्या विशेषताएं हैं, वह कैसे प्राप्त किया जा सकता है, इत्यादि विषयों से सम्बद्ध अनेकों प्रश्न वैदिक साहित्य शास्त्रों में निहित हैं। और इन जिज्ञासाओं का शमन भी वहाँ प्राप्त होता है। ऋग्वेद में एक स्थान पर दिखाया गया है कि, उसका अस्तित्व सर्वत्र प्रकट हो रहा है। वह सबका स्वामी है। संसार की सारी व्यवस्था उसको ही बढ़ाती है। वह सारे संसार का संहारक भी है।[1]

ईशावास्योपनिषद् के एक मंत्र में ईश्वर के स्वरूप का विस्तार से वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह ईश्वर सर्वव्यापक है, वह ज्योतिर्मय है। वह निराकार (अकाय) है। वह निष्पाप, निर्मल और सर्वज्ञ है। वह स्वयंभू अर्थात् अपनी सत्ता से विद्यमान है।[2] वहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वह ईश्वर संसार की प्रत्येक चर अचर सृष्टि में व्याप्त है।[3]

ईशावास्योपनिषद् के दो मंत्रों में ईश्वर के विरोधाभास के प्रयोग द्वारा समझाया गया है क्योंकि ईश्वर अवरणीय एवं अचिंतनीय है।जैसे वह निश्चल रहते हुए भी मन की गति से तेज है। वह सर्वत्र पहले से पहुँचा हुआ है।[4] उसकी सर्वव्यापकता का वर्णन किया गया है। यजुर्वेद में ईश्वर को सर्वोत्तम ज्योति बताया गया है। ऋग्वेद का कथन है कि सैकड़ों सूर्य भी उस ईश्वर के तेज की समानता नहीं कर सकते हैं। उसने ही सूर्य को तेज दिया है। उसके तेज से ही द्युलोक प्रकाशित हो रहा है। ऋग्वेद में एक स्थल पर वर्णन किया गया है कि ईश्वर अमर ज्योति है और वह मनुष्य के अन्दर विद्यमान है।[5]

कठोपनिषद् में कहा गया है कि, परमात्मा के प्रकाश से ही सूर्य चन्द्र आदि में तेज है। उसके तेज के सम्मुख सूर्य, चन्द्र, तारों आदि का प्रकाश तुच्छ है। उसके तेजसे ही सभी प्रकाशयुक्त पदार्थों में प्रकाश है।[6] वह ईश्वर अपनी शक्ति से संसार को देखता है। वह निराकार है। उसका रूप नहीं दिखाई पड़ता है। केवल उसकी गति ही दृष्टिगोचर होती है।

ईश्वर के विशिष्ट गुणों का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। ये विशिष्ट गुण हैं – वह परमात्मा अजर–अमर है। वह सबको गति देने वाला है। वह अधर्षणीय है। वह शीघ्रगामी है। वह सर्वत्र विजयी है। वह दोषों को दूर करने वाला है। वह सभी दोषों से मुक्त है। वह सैकड़ों प्रकार से रक्षा करने वाला है। वह शतक्रतु अर्थात् सैकड़ों पराक्रम के काम करने वाला है। वह सर्वत्र व्याप्त है।[7] वह धन–वैभव का प्रदाता है।

वह एकात्मक ईश्वर सब प्राणियों में निवास करने वाला है यह एकरूप वाला होकर भी अनेक रूप धारण करने की क्षमता रखता है।[8] ईश्वर के भय से अग्नि और सूर्य भी तपते हैं। उसी के भष से इन्द्र, वायु और यमराज

---

[1]नेन्द्रो अस्ति– इति नेम उ त्व आहुः०। ऋ०– 8/ 100/ 3–4
[2]स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण स मस्नाविरँशुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभू स्वयंभूर्याथातथ्यतो ऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।। ईशावास्योपनिषद्–8
[3]ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। ईशावास्योपनिषद्–1
[4]अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षं। तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।।
तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्थ तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।, ईशावास्योपनिषद्–4, 5
[5]इदंज्योतिरमृतं मर्त्येषु,– ऋ०– 6/9/4
[6]तस्य भासा सर्वमिदं विभाति, कठो०– 2 / 5 / 5
[7]सबाह्याभ्यन्तरो, मुण्डकोपनिषद–2 / 1 / 2
[8]एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा,

अपने अपने कार्यों में लगे हुए हैं।[9] वह ईश्वर ही संपूर्ण सृष्टि का नियंता है। वही संपूर्ण सृष्टि को अपने वश में करके उस को नियंत्रित करता है।

मुण्डकोपनिषद में ईश्वर से सृष्टि की उत्पत्ति का सुंदर उपमान देते हुए कहा गया है कि मकड़ी जैसे अपने पेट में स्थित जाले को निकालकर बुनती है और फिर पुनः उसे निगल लेती है, जिस प्रकार से पृथ्वी स्वयं से औषधियों को उत्पन्न करती है, जैसे मनुष्य से केश और लोम प्रकट होते हैं ठीक उसी प्रकार से उसी अविनाशी ईश्वर से यह विश्व प्रकट होता है।[10] इसी दृष्टांत के आधार पर वेदांत दर्शन भी ईश्वर की कारणता स्वीकार करता है।

वह चर और अचर जगत् का एकमात्र राजा है। सारे हिमयुक्त पर्वत, समुद्र और पृथिवी उसकी आज्ञा में हैं। उसने द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी को दृढ़ता प्रदान की है। वह अन्तरिक्ष में विभिन्न लोकों को रोके हुए है। उसने द्युलोक में सूर्य को प्रकाशित किया हुआ है। वह सभी देवों का अधिपति है।

वेदों में ईश्वर को प्रिय अतिथि बताया गया है। वह मित्र के तुल्य है। अतिथि का अभिप्राय है कि परमात्मा शरीर में स्थायी रूप से निवास नहीं करता है। वह कर्मफल के अनुसार कभी भी मनुष्य के शरीर को छोड़कर चला जाता है। वह मित्रवत् शुभकर्मों की ओर प्रेरित करता है और दुर्गुणों से बचाता है। ईश्वर को उरुधारा धेनु कहकर कामधेनु बताया गया है।[11] ईश्वर को कामधेनु बताने का अभिप्राय है कि वह पवित्रात्मा भक्त की सभी कामनाएं पूर्ण करता है। ईश्वर की स्तुति और प्रार्थना से मनुष्य की आत्मिक शक्ति उदबुद्ध होती है और उसमें मनोबल आता है। इस मनोबल से वह सभी अभीष्ट प्राप्त करता है।

यजुर्वेद के एक मंत्र में ईश्वर को द्युलोक, अन्तरिक्ष, भूमि, समुद्र आदि में सर्वत्र व्याप्त बतलाते हुए उसे मानव शरीर में व्याप्त (नृषद्) और हृदय में निवास करने वाला (मनःसद्) बताया गया है।[12] इसका अभिप्राय है कि उस सर्वव्यापक परमात्मा का हृदय में साक्षात्कार किया जा सकता है।

ऋग्वेद का कथन है कि परमात्मा निराकार होते हुए भी सब कुछ सुनता है और देखता है। उसकी शक्ति अनिर्वचनीय है। उस ईश्वर के पास अक्षय धन और समस्त सौभाग्य है।[13] ईश्वर ज्योतिर्मयी है,[14] विशिष्ट गुणों से युक्त है, वह 16 कलाओं से युक्त है, सूत्रात्मा है, दिव्य सुपर्ण वाला है,[15] प्रतिभा स्वरूप है, सर्व व्यापक है, संसार का कर्ताधर्ता है, सृष्टि का केंद्र है, विराट स्वरूप धारण करने वाला है, सर्वदेवमय है, निराकार है, एक है, अनेक नामों से संबोधित किया जाता है, संपूर्ण जगत का स्वामी है, ऋत है, हंस है, आगम है।

कारण कार्य सिद्धांत

भारतीय दर्शन के अनुसार कार्य कारण में ही अव्यक्त रूप से वर्तमान रहता है या सर्वथा कारण से भिन्न रहता है तथा इसकी नवीन उत्पत्ति होती है। इस प्रकार विविध सिद्धांत दिखाई देते हैं।

एकं रूपं बहुधा यः करोति।, कठो०– 2/ 2 /12

[9]भयादस्याग्निस्तपति भयात् तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः।। कठो०– 2/ 3 / 3

[10]यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च,यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्व म्।।, मुण्डकोपनिषद–1 / 1 / 7

[11]इन्द्रं धेनुं सुदुघाम् ....उरुधाराम् ऋ०– 8/1/10

[12]ध्रवसदं त्वा नृषदं मनः सदमुपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा जुष्टम् गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्। यजुर्वेद– 9.2

[13]त्वे वसूनि संगता..... सौभगा। ऋग्०– 8/78/ 8

[14]ज्योतिर्मयो हि,मुण्डकोपनिषद–3 / 3 / 5

[15]अथो दिव्यः स सुपर्णः , ऋग्वेद–1/164 /46

उपनिषदों और स्मृति ग्रंथों में प्राप्त तथ्यों के अनुसार भी कार्य कारण सिद्धांत के अनुरूप समस्त जगत रूप कार्य भी अपने कारण ब्रह्म में विद्यमान रहता है। यत्र तत्र वर्णन में प्राप्त बिंदुओं के अनुसार सृष्टि का कारण ब्रह्म तत्व है जिसे विभिन्न प्रकार से अलंकारिक रूपकों के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है।

कठोपनिषदमें सम्पूर्ण सृष्टि को एक अश्वत्थ अर्थात पीपल वृक्ष के रूप में दिखाया गया है। इस संसार रूपी वृक्ष का मूल ऊपर की ओर तथा शाखाएँ नीचे की ओर है।[16]इस वृक्ष का मूल कारण ब्रह्म कहा गया है जो अविनाशी सम्पूर्ण लोक का आश्रय शुद्ध और नित्य है।[17] वह इन्द्रियों,उन के विषयों मन, बुद्धि महत्तत्त्व तथा अव्यक्त से परे है।[18]

इस प्रकार ये इन्द्रियों से अव्यक्त पर्यन्त तत्त्व ही इस ब्रह्माण्ड रूपी वृक्ष की शाखायें प्रतीत होती है। आचार्य शंकर ने अव्यक्त को इस वृक्ष का बीज, हिरण्गर्भ को अंकुर, सम्पूर्ण प्राणियों के लिंग शरीरों को इसका स्कल्प, तृष्णा को इसके सिंचन के लिए जल, बुद्धि, इन्द्रियों और विषयों को इसके नवीन पत्ते यज्ञ, दान, तप आदि को इसके हरे पत्ते सुख, दुःख, वेदना को इसके फल ब्रह्मादि को इसमें निवास करने वाले पक्षी तथा सात दृ लोकोंको पक्षियों द्वारा निर्मित घोंसले कहा है।[19]

कठोपनिषद् में प्रतिपादित अश्वत्थ वृक्ष के अवयव सृष्टि प्रक्रिया की ओर संकेत करते हैं। जिस प्रकार वृक्ष बीज से उत्पन्न होता है उसमें कोपल, फल, फूल आदि उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार अव्यक्तसे महत् अहंकार, इन्द्रियाँ ब्रह्मादि लोकपाल मानव देव असुर उत्पन्न होते हैं।

प्रश्नोपनिषद् में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए पिप्पलाद ऋषि कहते है कि आत्मा से प्राण की उत्पत्ति होती है।[20] प्राण ही प्रजापति है।[21] वह प्रजा को उत्पन्न करने की इच्छा करता हुआ तप करता है। वह तप करके रयि और प्राण के जोड़े को उत्पन्न करता है।[22] ये रयि और प्राण चन्द्रमा और आदित्य हैं।[23] फिर वह प्राण से श्रद्धा आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी इन्द्रिय मन तथा अन्न को उत्पन्न करता है। अन्न से वीर्य, तप, मन्त्र कर्म, लोक और लोकों में नाम उत्पन्न करता है।[24]

मुण्डकोपनिषद् में अक्षर अर्थात् ब्रह्म से सम्पूर्ण पदार्थों की उत्पत्ति कही गई है।[25] जो संपूर्ण सृष्टि का कारण है और परिपूर्ण जगत उसका कार्य। वह पुरुष प्रकाश स्वरूप, मूर्ति रहित, सर्वव्यापक, जन्मरहित, प्राण रहित, मन रहित, पवित्र तथा प्रकृति से परे है। वह ब्रह्म तप से बढ़ता है। उससे अन्न उत्पन्न होता है। अन्न से प्राण, मन, सत्य लोक, कर्म और फल उत्पन्न होते हैं।[26]

---

[16]अथर्व–19/6/53/ 5–10 तथा 54/1– 4
[17]ऊध्वंमूलोवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।
तस्मिँल्लोकाः श्रिता सर्वेतदुनात्येति कश्चन। कठोपनिषद्–2 / 3 / 1
[18]कठोपनिषद्–1 / 3 / 10–11
[19]कठोपनिषद्–शांकर भाष्य– 2 / 3 / 11
[20]आत्मन एषः प्राणो जायते।, प्रश्नोपनिषद–3/3
[21]प्रजापतिश्चरति गर्भे त्वमेव प्रतिजायते तुभ्यं प्राण
प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राण प्रतितिष्ठसि। प्रश्नोपनिषद–2/7
[22]तस्मै स होवाच प्रजाकामी वै प्रजापतिः
स तपोतप्यत स तपस्तप्तवा स मिथुनमुत्पादयते।,प्रश्नोपनिषद–1/4
[23]आदित्यो ह वै प्राणोरयिरेव चन्द्रमाः, प्रश्नोपनिषद–1/5
[24]स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्रां रवं वायुज्योतिरापः पृथिवीईन्द्रयं
मनोऽन्नमन्नादवीर्यं तपो मन्त्रपः कर्म लोकारू लोकेषु नाम च।, प्रश्नोपनिषद– 6/4
[25]यथोर्णनाभि सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमनि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्व म्।। , मुण्डकोपनिषद्–1/1/7
[26]दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः।। , मुण्डकोपनिषद्–2/1/2

ऐतरेयोपनिषद् के अनुसार जगत् का मूल कारण आत्मा है। उसने लोक रचना का विचार किया। इस प्रकार उसने अम्भ, आप, मरीचि और मर इन लोकों की रचना की। अम्भ का स्थान द्युलोक से परे है तथा स्वर्ग उसकी प्रतिष्ठा है। अन्तरिक्ष मरीचि है। पृथ्वी मर्त्यु (मर) लोक है आप पृथ्वी के नीचे का लोक है। फिर उसने लोकपालों की रचना करने के लिए ईक्षण किया तथा जल में से एक पुरुष को निकाल कर अवयव युक्त किया। फिर उस पुरुष के उद्देश्य की पूर्ति से उसने तप किया। उस संकल्प किए पिण्ड से अण्डे के समान मुख उत्पन्न हुआ। मुख से वाक्–वाक् से अग्नि उत्पन्न हुई। फिर नासिका उत्पन्न हुई। नासिका से प्राण, प्राण से वायु उत्पन्न हुआ। फिरनेत्र प्रकट हुए। नेत्रों से चक्षु, चक्षु से आदित्य उत्पन्न हुआ। फिर कान उत्पन्न हुए। कानों से श्रोत्र, श्रोत्र से दिशाएँ प्रकट हुई। फिर त्वचा उत्पन्न हुई। त्वचा से लोम, लोमों से औषधि और वनस्पतियाँ उत्पन्न हुईं। फिर हृदय उत्पन्न हुआ। हृदय से मन, मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। फिर नाभि उत्पन्न हुई। नाभि से अपान, अपान से मृत्यु उत्पन्न हुई। फिर शिश्न प्रकट हुआ। शिशन से रेतस् रेतस् से जल उत्पन्न हुआ।[27]

तैत्तिरीयोपनिषद्– में ब्रह्म को सृष्टि की उत्पत्ति का कारण कहा गया है। वह सत्यं ज्ञान वाला और अनन्त है। उसी को आत्मा कह कर उससे आकाश, आकाश से वायु,वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से औषधियाँ, औषधियों से अन्न, अन्न से पुरुष की उत्पत्ति कही गई है।[28] उस पुरुष के अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोषों का उल्लेख किया गया है।[29]

छांदोग्य उपनिषद में समस्त सृष्टि का मूल कारण सत् कहा गया है।[30]सत ने संकल्प लिया कि, 'मैं बहुत हो जाऊं' और उसने तेज को रचा। तत्पश्चात संकल्प करते हुए क्रमशः संपूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति हुई।

'वेताश्वतरोपनिषद्' में परमात्मा की शक्ति जो अपने तीनों गुणों से आच्छादित है को जगत् का कारण कहा गया है।

तेध्यानयोगानुगताः अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैः निमूढ़ाम्,
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तानि अधितिष्ठति एकः।[31]

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्[32] में ब्रह्म से अव्यक्त अव्यक्त से महत, महत् से अहंकार, अहंकार से पंचतन्मात्रा, तन्मात्रों से पंचमहाभूत तथा महाभूतों से समस्त जगत् की उत्पत्ति कही गई है।[33]

स्मृति ग्रंथों में भी यत्र तत्र सृष्टि के कार्य कारण सिद्धांत की व्याख्या की गई है। सृष्टि की उत्पत्ति के मूल, क्रम आदि का वर्णन सूक्ष्म रूपसे किया गया है। मनुस्मृति में सृष्टि की उत्पत्ति का प्रतिपादन करते हुए गया है कि सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व अर्थात् प्रलयावस्था में यह जगत् अन्धकार से आवृत, ज्ञानरहित, लक्षणरहित, तर्करहित, अज्ञेय तथा सोया हुआ सा पड़ा था। तब अव्यक्त रूप–स्वयंभू– जो तमो रूप प्रकृति का प्रेरक है, उत्पन्न करने की महान् शक्ति वाला भगवान् है, समस्त संसार को प्रकट करने वाला अतीन्द्रिय सूक्ष्म रूप नित्य तत्व है, सब प्राणियों का आत्मा तथा अचिन्तनीय है वह प्रकट हुआ। फिर उस परमात्मा ने सदसदात्मकप्रकृति से महत् को, महत्तत्त्व से अभिमानात्मक और सामर्थ्यशाली अहंकार को, फिर उससे सब त्रिगुणात्मकपदार्थों को, आत्मोपकारक मन को, विषयों को ग्रहण करने वाली इन्द्रियों को उत्पन्न किया। तत्पश्चात अत्याधिक

---

[27]ऐतरेयोपनिषद्– 1 /1 / 1– 4
[28]यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञास्व। तद् ब्रह्मेति।, तैत्तिरीयोपनिषद्– 3/1
[29]सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म। तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः।
वायोरग्निः अग्नेरापः। अद्भ्य पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। औषधीभ्योऽन्नम्। अन्नत्पुरुषः। तैत्तिरीयोपनिषद्– 2 / 1
[30]तैत्तिरीयोपनिषद्– 2 / 1–7
[31]सदेव सोम्येदमग्र आसीद्। छांदोग्य उपनिषद–6/2/1
[32]श्वेताश्वेतरोपनिषद्–1.3
[33]त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्– 3

शक्तिशाली 6 अवयवों अर्थात् अहंकार तथा 5 तन्मात्राओं से पंचमहाभूतों की उत्पत्ति की।[34] इन छःअवयवों तथा उनके कार्यों को परमात्मा का शरीर कहा गया है।[35] उस परमात्मा ने अपने शरीर से अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा से ध्यान करके पहले अप् तत्त्व की उत्पत्ति की फिर अप् तत्त्व में शक्ति रूपी बीज छोड़ा। वह बीज हजारों सूर्यो की ज्योति के समान सुनहरे अण्डे में परिणत हो गया। तत्पश्चात समस्त लोकों के पितामह ब्रह्मा उससे अपने आप उत्पन्न हुए।[36] तत्पश्चात ब्लॉक और पृथ्वी लोक समस्त दिशाएं समुद्र आदि उत्पन्न हुये।[37] उसके पश्चात उन्होंने समस्त पदार्थों के नाम, भिन्न–भिन्न कर्म, वर्णों के विभाग किये।[38] तत्पश्चात अग्नि आदि से चारों वेदों की उत्पत्ति हुई समय आदि के विभाग के साथ नक्षत्र ग्रह सरिता एवं अन्य तत्व उत्पन्न हुए और इस प्रकार सारी सृष्टि को रचा।

याज्ञवल्क्य स्मृति में निरूपित सृष्टि का मूल आत्मा को कहा गयाहै।[39] वह निमित्त, अक्षर, कर्ता, बोद्धा, ब्रह्म, गुणी, स्वतन्त्र, अजन्मा होने पर भी शरीर ग्रहण करने से जन्मा है।[40] टीकाकार विज्ञानेश्वर ने उसे वास्तव में निर्गुण किन्तु अविद्या या प्रकृति रूपी शक्ति से युक्त होने पर त्रिगुणात्मक तथा सम्पूर्ण जगत् या प्रपंच के आविर्भाव के लिए अविद्या केसमावेश के वश मैं समवायि, असमवायि और निमित्त कारण कहा है।[41]परन्तु अन्यत्र स्मृतिकार ने जगत् के कारण के रूप में उसका वर्णन करते हुए कहा है कि जिस प्रकार कुम्भकार दण्ड, चक्र और मिट्टी के संयोग से घट बनाता है। गृहकारक तिनके, मिट्टी और काष्ठ से घर को बनाता है। हेमकारक स्वर्ण मात्र से अनेक आभूषण बनाता है तथा जिस प्रकार मकड़ी अपनी ही लार से जाला बुनती है उसी प्रकार आत्मा भी श्रोत्र आदि इन्द्रियों को लेकर पृथिवी आदि साधनों से स्वयं इस संसार में विभिन्न योनियों में अपने ही शरीर की रचना करता है। इस प्रकार कुम्भ के प्रति कुम्हार के, गृह के प्रति गृहकार के तथा स्वर्ण के प्रति स्वर्णकार के उदाहरण की तुलना से वह निमित्त कारण प्रतीत होता है। परन्तुजाले के प्रति मकड़ी के उदाहरण से उसकी तुलना करने पर वह निमित्त असमवायि और उपादान कारण प्रतीत होता है। वह अनादि, आदिमान्, परमुपुरुष, सद्, असद्, सदसद् रूप है।[42] वह एक होते हुए भी अज्ञानवश अनेक प्रतीत होता है।[43]

श्रीमद्भगवद्गीता मेंतो श्री कृष्ण को ही जगत् का मूल कारण कहा गया है। वह जगत् के पिता, माता, धाता, जानने योग्य, पवित्र, ओंकार, ऋक्, यजुः, सा, गति, भर्ता प्रभु, साक्षी, निवास, शरण, सुहृत्, उत्पत्ति– विनाश का स्थान, कोष, उत्पत्ति का कारण, परमब्रह्म तथा परम आश्रय हैं।[44] निष्कर्षतः ब्रह्म ही जगत् का निमित्त तथा उपादान दोनों कारण है। अतएव संपूर्ण जगत उसका कार्य है तथा स्वयं परब्रह्म परमात्मा इस सृष्टि काकारण।

---

[34]मनुस्मृति– 1 / 14–6
[35]यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट्। तस्माच्छरीर मित्याहुस्तस्य मूर्ति मनीषिणः,– मनुस्मृति– 1 / 14
[36]सोभिध्याय शरीरात्स्वात्सिमृक्षुर्विविधाः प्रजाः। अप एव ससर्जाडिडदौ तासु बीजमवासृजत्।।
तदण्डमभवद् हेमं सहस्राशंसमप्रभम्। तस्मिंयज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः।।, मनुस्मृति–1 / 8–9
[37]तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्। स्वयमेवोत्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोदद्विधा।।
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे। मध्ये व्योम दिशाचाष्टावपां स्थानं व शाश्वतम्।। मनुस्मृति–1/12–13
[38]सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवोदौ पृथक्संस्थाशय निर्ममे।। मनुस्मृति–1 / 21
[39]निःसरन्ति यथा लोहपिण्डात्तप्तात्स्फुलिंगकाः।
सकाशादात्मनस्तद्वदात्मानः प्रभवन्ति हि।।, याज्ञवल्क्य स्मृति–3/4/67
[40]निमित्तमक्षरः कर्ता बोद्धा ब्रह्म गुणी वशी।
अजः शरीर ग्रहणात्स जात इति कीर्त्यते।। याज्ञवल्क्य स्मृति–3/4/69
[41]सत्यमात्मा सकलजगत्प्रपंचाविर्भावेविद्यासमावेशवशात्समवाय्य
समवायिनिमित्तमित्येवं स्वयमेव त्रिविधमपि कारण , न पुनः कार्यकोयिनिविष्टः।
नचासौ निर्गुणः। यस्तस्य त्रिगुणात्तिरविद्या प्रकृतिप्रधानद्य– परपर्याया विद्यते।
अतः स्वतो निर्गुणत्रेपिशक्तिमुखेन सत्वादि गुणयोगी कथ्यते।।, याज्ञवल्क्य स्मृति–मिताक्षरा व्याख्या
[42]अनादिरादिमाँश्चौव स एव पुरुषः परः।
लिंगेन्द्रियग्राह्यरूपः सविकार उदाहृतः।। याज्ञवल्क्य स्मृति–3/4/ 183
[43]आकाशमेकं हि यथा घटादिषु पृथग्भवेत्।
तथात्मैको ह्यनेकथ्य जलाधारेष्विवांशुमान्।। याज्ञवल्क्य स्मृति–3/4/144
[44]परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्, पुरुष शाश्वत दिव्यमादिदेवमजं विभुम्। श्री मद्भगवद्गीता 10.12
कथं विद्यामहं योगिस्त्वां सदा परिचिन्तयन्, केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया। श्री मद्भगवद्गीता 17

सृष्टि के मूल तत्व

सब से पहले एक अव्यक्त रूप था और और उसी से व्यक्त रूप में जगत् की सृष्टि हुई है। यह अव्यक्त रूप ही तो 'परब्रह्म' है और समस्त जगत् इसी से उत्पन्न होता है एवं अन्त में इसी में लय को प्राप्त करता है। यही उपनिषद् में कहा गया है–

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।
येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।[45]

मैत्रायणी उपनिषद में सृष्टि के मूल तत्व के रूप में ब्रह्म के 2 रूपों की व्याख्या की गई है एक मूर्त और दूसरा अमूर्त जिसमें मूर्त रूप असत्य है और अमूर्त रूप सत्य है। सत्य रूप ही ब्रह्म है, वही ज्योति है, वही आदित्य है, वही ओंकार है और वही आत्मा भी है।[46]

निर्ष्कषः–

अथर्वशिरोपनिषद में सृष्टि का मूल कारण एक ही तत्व कहा गया है जिसे रुद्र नाम से अभिहित किया गया है। वहां पर उसकी महिमा का बखान करते हुए कहा गया है कि, सर्वप्रथम उसी का जन्म हुआ। वही मध्य में है वही अंत में है और वही उत्पन्न होता है और आगे भी वही उत्पन्न होगा। प्रत्येक व्यक्ति में वही व्याप्त हो रहा है। केवल एक रूद्र ही है,अन्य कोई नहीं जो इस लोक का नियमन करता है उसी के भीतर सब रहते हैं, अंत में सब का लय उसी में होता है। वही विश्व का सृजन और रक्षण करने वाला है।[47]

शुकरहस्योपनिषद्में भी सृष्टि का मूल तत्व ब्रह्म को ही माना गया है। जिसके अनुसार द्वैत के अस्तित्व से शून्य नामरूप रहित सत्ता ही ब्रह्म है। प्रणवोपनिषद्में भी सृष्टि का मूल तत्व ब्रह्म को ही कहा गया है। ब्रह्म में ही ओंकार का लय होता है। ओंकार से ही समस्त सृष्टि जन्मती है।

विस्तरेण्यऽत्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन, भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्। श्री मद्भगवद्गीता 18

[45]त्तैत्तिरीयोपनिषद्– 3 / 1

[46]मैत्रायणी उपनिषद– 5/3

[47]एको ह देवः प्रदिशो नु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्नास्तिष्ठति सर्वतोमुखः।
एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्मै य इमाल्लोकानीशत ईशानीभिः।
प्रत्यङ्जनास्तिष्ठिति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्व ा भुवनानि गोप्ता.....। अथर्वशिरोपनिषद– 5